Chap-6

षष्ठ अध्याय

प्रमगीत काव्य में भक्ति एवं दार्शनिकता

षष्ठ अध्याय

भ्रमरगीत काव्य में भक्ति एवं दार्शनिकता

भ्रमरगीत काव्य के कलापक्ष पर विचार करने के पश्चात् यहां इस काव्य-परंपरा में भक्ति एवं दार्शनिकता पर विचार किया जा रहा है। भ्रमरगीत काव्य मूलत: प्रेम-भक्ति प्रधान काव्य है। इसे प्रेम-लक्षणा भक्ति का उद्गार कहा जा सकता है।

भक्ति का प्रारंभ और परिशीलन हृदय तत्व से एकान्तत: सम्बंधित रहा है। भक्ति की प्राचीनता पर विभिन्न विद्वानों द्वारा पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है अत: यहां पर विस्तार में न जाकर संक्षिप्त चर्चा कर लेना उचित होगा।

भक्ति की व्याख्या :

`भज्` धातु और `क्तिन्` प्रत्यय से भक्ति शब्द बना है। `भक्ति` शब्द का अर्थ है भावद सेवा करना। उपास्य के प्रति अनुराग का नाम ही भक्ति है।

`नारद -भक्ति-सूत्र` में भक्ति को परम प्रेम-रूपा, अमृत स्वरूपा तथा कर्म, ज्ञान और योग से भी अधिक प्रतिपादित किया है -

सा त्वस्मिन परमप्रेमरूपा ।। २ ।।
अमृतस्वरूपा च ।। ३ ।।
सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्यो ऽप्यधिकतरा ।। २५ ।।
महर्षि शाण्डिल्य ने ईश्वर में परमानुरक्ति को भक्ति माना है -
सा परानुरक्तिरीश्वरे ।।२।।

(शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र)

महाप्रभु वल्लभाचार्य माहात्म्य ज्ञानपूर्वक भगवान में सुदृढ़ एवं सर्वाधिक स्नेह को भक्ति कहते हैं -

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ: सर्वतोधिक: ।
स्नेहोभक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा ।। [१]

१- तत्वदीप निबन्ध : श्लोक २५

हिन्दी एवं गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में व्याप्त भक्ति का मूलाधार इन व्याख्याओं में निहित है। ज्ञान, कर्म और भक्ति साधना के तीन प्रमुख मार्ग हैं। इनमें भक्तिमार्ग अपेक्षाकृत सुगम माना गया है। भक्ति श्रद्धा और विश्वास पर आधारित है। गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम ऐसी ही भक्ति है जिसका सत्प्रतिशत सम्बन्ध हृदय से है।

सगुण तथा निर्गुण भक्ति :

वल्लभ संप्रदाय के अंतर्गत ब्रह्म के निर्गुण-सगुण दोनों रूप स्वीकृत हैं। इस पर भी निर्गुण की अपेक्षा सगुण का माहात्म्य अधिक माना गया है। सगुणोपासना अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि इस भक्ति-पद्धति में मूर्त या साकार का आधार ग्रहण किया जाता है। जबकि निर्गुणोपासना का रूप अस्पष्ट होने के कारण सूर जैसे कवियों ने उसे भ्रामक कहा है -

रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।
सब विधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै।।[१]

अधिकांश भ्रमरगीतकारों ने निर्गुण की अपेक्षा सगुण की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उन्होंने ज्ञानमार्ग को कठिन एवं नीरस कहा है जबकि भक्ति-मार्ग को सरल और सरस कहा है। सूर ने भक्तिमार्ग को राजपथ कहा है -

राजपंथ ते टारि बतावत उरझ, अबीझ कुपैंडो।
सूरजदास समाय कहां औ अज के बदन दुम्हैंडो।।[२]

भ्रमरगीत के कवियों ने निर्गुणोपासना का सर्वथा निषेध किया हो ऐसी बात नहीं है। उनके अभिप्राय में गोपीजन आदि सरल हृदय के लोगों के लिए सगुण भक्ति-मार्ग ही विशेष उपयुक्त है। निर्गुण-सगुण को लेकर भ्रमरगीतकारों ने विस्तृत चर्चा विचारणा की है।

१- सूरसागर पद २

२- वही, पद ४५०८

भक्ति के प्रकार :

भक्ति के विभिन्न रूपों का निर्णय करना कठिन है। रूपगोस्वामी ने 'हरि भक्ति रसामृत सिंधु' में भक्ति का विभाजन इस प्रकार किया है[1] -

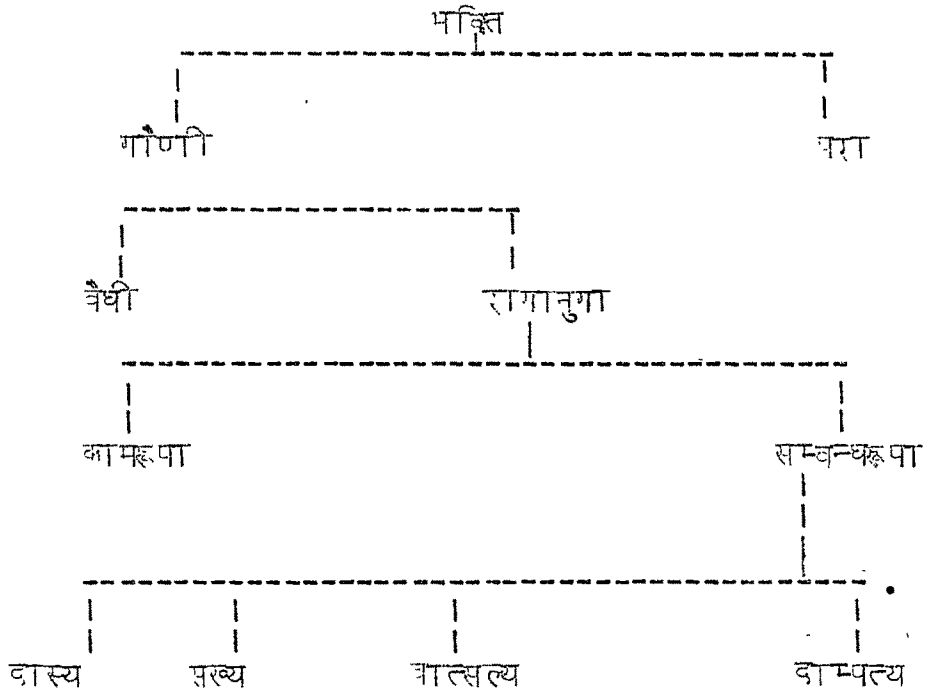

सिद्ध दशा की भक्ति परा भक्ति है। जो सर्वोच्च कोटि की है। इसमें समर्पण की भावना का प्राधान्य होता है। निष्काम होकर प्रेमानन्द में निमग्न होना परा-भक्ति है।

भागवत में मानव के स्वभावानुसार भक्ति के चार भेद गिनाये हैं - (१) तामसी (२) राजसी (३) सात्विकी और (४) निर्गुण।[2] प्रथम तीन काम्य हैं और अंतिम निष्काम है। भागवत के सप्तम स्कंध में नवधा भक्ति का उल्लेख मिलता है -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥[3]

१- हरि-भक्ति-रसामृत-सिन्धु पृष्ठ-८ सं० डा० नगेन्द्र

२- भागवत ३-२९ ८-१४

३- भागवत ७।५।२३

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन में प्रथम तीन का सम्बंध भगवान के नाम तथा भगवान की लीलाओं से है। अन्य तीन -पाद सेवन, अर्चन और वन्दना का रूपसेवा से सम्बंध माना गया है। अंतिम तीन दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन भगवान में समर्पणीय भाव हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने नवधा-भक्ति को दसवीं प्रेम-लक्षणा भक्ति का साधन बताया है -

बीजाख्यं प्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मत: ।
अव्यावृत्तो भजेत्पुष्टां पूजया च श्रवणादिभि : ।।
व्यावृत्तोपि भजेत्पुष्टां हरौ चित्तं श्रवणादौ मनेस्तदा ।[१]

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने प्रेम-लक्षणा भक्ति को ही सबसे अधिक महत्व दिया है। चंचल मन को स्थिर करने के लिए दृढ़ आधार की आवश्यकता रहती है। साध्य का शील, सौन्दर्य मण्डित रूप चंचल मन को स्थिर करता है। ब्रह्म की पूजा, उपासना, स्तुति, वंदना और अर्चना आदि द्वारा मनुष्य दृढ़ प्रेम को प्राप्त करता है।

ज्ञानमार्ग तथा भक्तिमार्ग में बाह्य विभिन्नता होते हुए भी मूलत: दोनों एक ही हैं। इन दोनों मार्गों में मूल अन्तर ब्रह्म को ग्रहण करने में है तथा प्राप्ति के साधनों में है। भक्तिमार्गी शील, शक्ति और सौन्दर्य मण्डित मनमोहक साकार रूप में कल्पना करते हैं जबकि ज्ञानमार्गी उसे मात्र ज्योतिपुंज रूप में देखते हैं, जिसका दर्शन त्रिकुटी में किया जा सकता है। इस प्रकार मूल अन्तर आधार को लेकर है। भक्तिमार्ग में हृदय प्रधान है और ज्ञानमार्ग में मस्तिष्क प्रधान है। प्राय: सभी भ्रमरगीतकारों ने सगुण-निर्गुण के विवाद को न्यूनाधिक मात्रा में उठाया है।

शुद्धाद्वैतवाद : पुष्टिमार्ग :

हिन्दी में ऐसे कई ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं जिनमें शुद्धाद्वैतवाद-पुष्टिमार्ग पर विचार किया गया है। यहां संक्षेप में कुछ प्रमुख बातों की ओर निर्देश करना हमारा

१- भ.व. आचार्य वल्लभ

अभीष्ट है। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का मत दार्शनिक क्षेत्र में शुद्धाद्वैत, ब्रह्मवाद, तथा अविकृत परिणामवाद और भक्ति के क्षेत्र में 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है। पुष्टि-मार्ग का आधार भागवत ही है।

वल्लभाचार्य जी के 'अणुभाष्य', 'तत्व दीप निबंध', 'सुबोधिनी टीका' आदि रचनाओं से उनके दार्शनिक विचारों का परिचय मिलता है। 'शुद्धाद्वैत' में 'शुद्धा' शब्द का अर्थ है मायारहित। मायारहित ब्रह्म ही जगत का कारण एवं कार्य है। इस प्रकार ब्रह्म, जीव, जगत सभी ब्रह्मरूप हैं। जगत् ब्रह्म का विकाररहित परिणाम है।

ब्रह्म का स्वरूप :

वल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म सत्चित् और आनन्द स्वरूप है। ब्रह्म नित्य है और उसकी लीला भी नित्य है। वल्लभ संप्रदाय में ब्रह्म के तीन रूप माने जाते हैं -

१) आधिदैविक-परब्रह्म

२) आध्यात्मिक अक्षर ब्रह्म और

३) आधिभौतिक जगत् ब्रह्म।

आधिदैविक परब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह एकमात्र भक्ति से ही लभ्य है। श्रीकृष्ण परब्रह्म तथा रसरूप हैं।[१] इस प्रकार कृष्ण तथा ब्रह्म में अभेद माना गया है। स्वयं कृष्ण ही रसात्मा, रमेश, विरुद्ध धर्माश्रयी पूर्ण ब्रह्म हैं।[२] वे आनन्दमय हैं और उन्हीं की कृपा से जीव को आनन्द की प्राप्ति होती है। वे ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन छः गुणों से युक्त हैं। लीला के विविध निमित्त भगवान ने कई अवतार धारण किए हैं। इन अवतारों में से गोकुल में से प्रगट हुए श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं और शेष सभी अंशावतार हैं। यही कृष्ण भक्तों के सेव्य हैं। वे अन्तर्यामी रूप से जीव के हृदय में सदा विद्यमान रहते हैं। उनके अवतार का उद्देश्य भक्तों का दुःख

१- एते चांशकला : पुंसःकृष्णस्तु भगवान् स्वयं भागवत (१:३:२८:)

२- परंब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्द बृहत्।
सिद्धान्तमुक्तावली : वल्लभाचार्य श्लोक :३

निवारण तथा निज लीलाओं का विस्तार करना है - उन्हें श्रवण करके तथा गाकर भक्त संसार बन्धन से मुक्ति पाते हैं ।[१]

जीव :

शुद्धाद्वैत के अनुसार अग्नि से विस्फुलिंगों की तरह जीवों की उत्पत्ति होती है ।[२] भगवान का चिरंश जीव है । जीव वास्तव में ब्रह्म से भिन्न नहीं है । जीव वास्तव में ब्रह्म अंश से भिन्न नहीं है । जीव ब्रह्म के अल्प गुणों से युक्त होता है ।[३] भगवान के अंश होने पर भी जीवों में हीरा, माणिक्य आदि पाषाणों की भांति उच्चता और निम्नता पाई जाती है । वल्लभाचार्य जी ने जीवों के दो प्रमुख प्रकार बताये हैं -

दैवी तथा आसुरी । दैवी जीव मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, जबकि आसुरी जीवों के लिए मुक्ति असंभव है । वे संसार प्रवाह में बहते-रहते हैं । दैवी जीवों की भी दो कोटियां हैं - (१) पुष्टिजीव और (२) मर्यादाजीव । पुष्टिजीव चार प्रकार के होते हैं -(१) शुद्ध पुष्ट (२) पुष्टिपुष्ट (३) मर्यादापुष्ट और (४) प्रवाह पुष्ट । ये पुष्टिजीव भगवान की सेवा भक्ति के अधिकारी होते हैं । मर्यादा जीव ज्ञान, कर्म तथा योग द्वारा वैकुण्ठ अथवा स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं । आसुरी जीवों के दो भेद हैं - दुर्ज्ञ और अज्ञ ।[४] दुर्ज्ञ जीवों का कभी उद्धार नहीं होता और अज्ञ जीव भगवान के हाथों मृत्युशरण होने पर मुक्ति लाभ करते हैं । दुर्ज्ञ आसुरी जीव निरंतर जन्म-मरण के बन्धन में पड़े रहते हैं ।

जगत :

जगत् ब्रह्म की सहज सृष्टि है । यह भी जीव की भांति भगवान की क्रीड़ा के निमित्त अग्नि-विस्फुलिंग के समान उनसे उद्भूत हुआ है और अन्त में उसी में लीन

१- वेदान्त सूत्र ८-१-१४ अणुभाष्य ।

२- विस्फुलिंगा इवाग्नेर्हि जड़जीवा विनिर्गताः ।
संदंशेन जड़ा पूर्वं चिरंशेनेतरे परं ।। २-३-४३

३- छः गुण : ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान

४- जीवास्ते त्वसुरा : सर्वे प्रवृत्ति चेति वर्णिता : ।
ते च द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञदुर्ज्ञविभेदतः ।। पुष्टि प्रवाह मर्यादा भेद २४

हो जायगा ।[1] ब्रह्म से पृथक जगत् आकाश पुष्प की भांति मिथ्या है । जगत् से भिन्न संसार जीव के निजी विचारों की सृष्टि है । इसीलिए मोक्ष दशा में संसार अदृश्य हो जाता है पर जगत् उसी समय विलीन होता है जब भगवान केवल अपने से ही क्रीड़ा करने के निमित्त समस्त सृष्टि को अपने में समेट लेते हैं ।[2] इस प्रकार जगत को विद्या माया से तथा संसार को अविद्या माया से उत्पन्न माना गया है । वल्लभाचार्य से पूर्व जगत् की सत्यता की पूर्ण प्रतिष्ठा किसी ने भी नहीं की । शंकराचार्य के उद्घोष 'जगन्मिथ्या' के पश्चात् यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण दार्शनिक विधान है ।

पुष्टिमार्गीय भक्ति :

पुष्टि का अर्थ है सेवा । पुष्टिमार्ग में भगवान की पुष्टि अथवा अनुग्रह की भावना निहित है । ब्रह्म के अनुग्रह द्वारा ही इस संसार सागर को पार किया जा सकता है । भागवत के 'पोषणं तदनुग्रह :'[3] के अर्थ में ही 'पुष्टि' शब्द का प्रयोग किया गया है । भगवान की यह कृपा सेवा भक्ति-भाव से प्राप्त की जा सकती है । अंशरूप जीव अंशी ब्रह्म के साथ जो सम्बन्ध प्रस्थापित करता है, वही ब्रह्म सम्बन्ध है । पुष्टि मार्ग में दीक्षित होते समय ही भक्त गुरु के आदेश से 'श्रीकृष्ण : शरणं मम' मंत्र का उच्चारण करके श्रीकृष्ण को अपने तन, मन, धन, पुत्र, कलत्र आदि के समर्पण का संकल्प करता है । इसके बाद भक्त किसी भी वस्तु को भगवान को समर्पित किये बिना ग्रहण नहीं करता । इस सर्वात्म समर्पण के भाव को लेकर तीन प्रकार की सेवा की जाती है -

(१) तनुजा अर्थात अपने तथा अपने पुत्र, स्त्री आदि के शरीर को भगवान की सेवा में लगाना । (२) वित्तजा अर्थात् धन, चल-अचल संपत्ति को भगवान के निमित्त अर्पित करना । (३) मानसी अर्थात् मन का निरोध करके निरन्तर भगवान में लीन रखना । मानसी सेवा ही महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ है । पुष्टिमार्ग में उपासक के चित्त को भावात्मक सेवा के मानसी रूप तक पहुंचाने के लिए कुछ क्रियात्मक सेवाओं का विधान किया गया है ।

१- कृष्णादेव समुद्भूतम्, लीनं तत्रैव तन्मयम् । १८, वेदस्तुति । दशमस्कंध पर सुबोधिनी।

२- वेदान्त सूत्र १-१-११ अणुभाष्य ।

३- भागवत २।१०।४

अष्टयाम सेवा तनुजा तथा वित्तजा नामक क्रियात्म सेवाओं का सम्मिश्रण रूप है। ये दैनिक सेवाएं प्रात:काल से संध्या पर्यन्त आठ प्रहरों तक व्याप्त हैं। इनके नाम इस प्रकार है -(१) मंगलादर्शन (२) शृंगार (३) गोचारण(ग्वाल)(४) राजभोग (५) उत्थापन (६) भोग(७)संध्या (८) शयन।

भगवान की प्राप्ति का सुगम उपाय केवल भक्ति ही है। ज्ञान के बल पर ज्ञानी अक्षरब्रह्म को ही प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु परब्रह्म, सच्चिदानन्द की उपलब्धि भक्ति के ही द्वारा होती है।[१] वल्लभाचार्य ने जिस पुष्टिमार्ग या सेवा-मार्ग का विचार आचार के क्षेत्र में किया वह उनके शुद्धाद्वैत दर्शन की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

साधना को सरल बनाने की जो प्रवृत्ति वल्लभ के पूर्वकालीन रामानुजाचार्य से आरंभ हुई थी, उसकी चरम अभिव्यक्ति वल्लभ संप्रदाय की साधना में प्रकट हुई। इस प्रेमाभक्ति के प्रांगण में सभी वर्ण, व्यक्ति, जाति अथवा वर्ग के लोग समान भावभूमि पर प्रतिष्ठित हो सकते थे और यही कारण है कि यह शीघ्र ही इस युग का लोकधर्म बनकर जन जीवन में व्यापक रूप से फैलने लगा। धर्मान्ध मुस्लिम शासकों से पराक्रांत तत्कालीन जन-समुदाय के लिए यज्ञ-भागादि के अनुष्ठानों का निर्विघ्न संपन्न होना उन दिनों असंभवप्राय था। उपनिषदों का गूढ़ दर्शन भी जन-साधारण की पहुंच से बाहर था और उधर कायालिक एवं वाममार्गीय साधनों से चमत्कृत एवं आकृष्ट जनता भ्रांत हो रही थी। ऐसे समय में देश की जनता के लिए पीधा-सादा राजमार्ग होना चाहिए था, जिस पर चलकर हताश तथा नि:सहाय जनता सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाती। पुष्टिमार्ग में लोक-कल्याण का यही दृष्टिकोण वर्तमान है, जिसमें भगवदनुग्रह का सरल मार्ग वर्ण, जाति तथा समाज के भेद-भाव के बिना सभी के लिए खुला हुआ है।[२] महाप्रभु वल्लभाचार्य जानते थे कि योग, ज्ञान तथा वाममार्गीय साधनाएं दुस्साध्य ही नहीं अपितु उनमें से कुछ तो हानिकारक थीं। सोलहवीं

१- भारतीय दर्शन : आचार्य बलदेव उपाध्याय,नवीन संस्करण : १९७१ पृ० ४२०

२- भारतीय साहित्य और संस्कृति : डा० मदनगोपाल गुप्त पृ० ५३

शती की भारतीय जनता के आकर्षण केन्द्र दिल्ली और आगरा के वैभव से जगमगाते राज दरबार थे, जहाँ कामिनी-कंचन, सौन्दर्य और सुरा के साथ मुस्लिम संस्कृति का बोलबाला था । आचार्य वल्लभ ने देखा कि गोरी दीनता के प्रदर्शन से जनता का आकर्षण उन दरबारों के प्रति और बढ़ेगा । अत: उन्होंने लौकिक सम्राटों की ओर से जनता का ध्यान हटाकर अलौकिक व वैभवशाली भगवान श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, संगीत एवं विभूति से ओत-प्रोत लीलाओं को ब्रजधाम में उतार कर जनता के मन को इस ओर द्रुत गति से आकृष्ट किया । इसके लिए उन्होंने श्रीकृष्ण के सुकुमार एवं मनोहर स्वरूपों को आराध्य बनाकर आनन्द की अजस्र धाराओं से जनता में अद्भुत आत्मगौरव का संचार कर दिया । यह भक्ति का ऐसा सरलतम रूप था जिसे कि जन-समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति भलीभांति अपना सकता था । मानवमात्र की सामान्य प्रवृत्ति प्रेम-भावना को ईश्वरोन्मुख कर देने से इस प्रवृत्ति के परिष्कार का महत्वपूर्ण कार्य भी संपन्न हुआ । इस प्रकार प्रेम भक्ति के आन्दोलन को जनव्यापी रूप देने में वल्लभाचार्य तथा उनके अनुयायी आचार्यों एवं भक्तों का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है.। विल डूरेण्ट के मतानुसार मध्यकालीन भारत में उदित हुए अनेक संप्रदायों के बीच महाप्रभु वल्लभाचार्य के व्यक्तित्व तथा शिक्षाओं ने भारत तथा बाहर के जन-जीवन को जितना अधिक आकृष्ट किया है उतना किसी अन्य ने नहीं किया ।[१] उन्होंने स्थान-स्थान पर घूमकर समाज के प्रतिभाशाली व्यक्तियों को अपनी विचारधारा की ओर मोड़कर कृष्ण-भक्ति के प्रचार-प्रसार का संगठित प्रयास किया था ।[२]

अष्टछाप के कवि :

भगवत्प्रेम -सुधा का सागर लहराने वाले महाकवि सूरदास तथा उनके समकालीन अष्टछाप के कवियों की कविता महाप्रभु वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत दर्शन और पुष्टिमार्गीय भक्ति भावना से प्रभावित है । पुष्टिमार्ग के संस्थापक महाप्रभु वल्लभाचार्य के चार और उनके पुत्र विट्ठलनाथ के चार प्रधान शिष्य क्रमश: कुंभनदास, सूरदास, कृष्णदास, और परमानन्ददास तथा गोविन्ददास, छीतस्वामी, नन्ददास और चतुर्भुजदास, 'अष्टछाप'

१- नार्थ इण्डियन सेन्ट्स : विल डूरेन्ट पेज ८१

२- अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ७१ से ७३ द्रष्टव्य

के नाम से प्रसिद्ध हैं। कवि होने के साथ साथ ये अच्छे संगीतज्ञ भी थे। अष्टछाप के कवियों के काव्य और संगीत के योग ने कृष्ण-भक्ति आन्दोलन को उत्साह और आनंद से आप्लावित कर दिया। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि अष्टछाप के कवि भक्त और कवि ही अधिक थे, सिद्धान्तवादी नहीं। दार्शनिक विवेचन न तो कविता का विषय है और न कवियों का साध्य। शुद्धाद्वैतदर्शन तथा पुष्टि-भक्ति के सिद्धान्तों का शास्त्रीय विवेचन इन कवियों ने नहीं किया। उन्होंने शुद्धाद्वैत दर्शन और पुष्टि-भक्ति के मूल सिद्धान्तों को गहराई के साथ समझकर और हृदयंगम कर व्यावहारिक अभिव्यक्ति की है।

सूरदास और नन्ददास :

अष्टछाप के कवियों में भ्रमरगीत काव्य परंपरा की दृष्टि से प्रमुख उल्लेखनीय कवि सूरदास और नन्ददास हैं। इन दोनों कवियों के भ्रमरगीतों में भक्ति एवं दर्शन की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में हुई है। श्रीमद्भागवत से कथासूत्र लेते हुए भी सूर ने अपनी काव्य प्रतिभा एवं साधनात्मक सिद्धान्तों के अनुसार अपने भ्रमरगीत काव्य में बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया है। भागवत के दशम स्कंध में उद्धव को कृष्ण के विरह में विकल नंद, यशोदा और गोपियों को एक मात्र सांत्वना देने का कार्य सौंपा है। पर सूर के भ्रमरगीत काव्य में कृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज भेजने का उद्देश्य दिमुखी रहा है। वियोग में संतप्त नंद, यशोदा एवं ब्रज वनिताओं को सांत्वना देने के उपरान्त उद्धव के ज्ञान-गर्व को दूर करना भी प्रमुख उद्देश्य रहा है। एक प्रकार से सूर के उद्धव को पूर्वांतीं निर्गुण-वादी सन्तों, योगमार्गियों तथा शंकर के अद्वैतवादी मतावलंबियों का प्रतीक कहा जा सकता है। सूर के भ्रमरगीत की सबसे बड़ी विशेषता सगुण की निर्गुण पर विजय या प्रेम और भक्ति की ज्ञान तथा योग पर विजय दिखलाया है। भागवत में ज्ञान और भक्ति में किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं है। भागवतकार का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान, कर्म और भक्ति के सामंजस्य प्रस्थापित करना रहा है। जबकि सूर का प्रमुख उद्देश्य सगुण भक्ति के समर्थन के साथ साथ ज्ञान, योग और निर्गुण जैसी साधनाओं का पूर्ण विरोध करना रहा है। नंददास के भ्रमरगीत में उद्धव के निर्गुण ब्रह्म और गोपियों के सगुण ब्रह्म के लिए अपने अपने तर्क हैं। ज्ञानयोग और भक्तियोग के बीच विवाद है और अंत में सगुण भक्तिमार्ग की स्थापना की गई है।

सूर के उद्धव की ज्ञानमार्गी विचारधारा :

संसार के दु:ख का मूल कारण अज्ञान है। इस दु:ख से मुक्ति पाने के लिए तत्वज्ञान आवश्यक है -

ज्ञान बिना कहुंवे सुख नाहीं ।।[१]

कृष्ण परब्रह्म, अच्युत और अविनाशी है। उद्धव गोपियों को सर्वव्यापी परब्रह्म का हृदय में ध्यान धरने के लिए कहते हैं -

उर में आनौ ब्रह्महिं जानौं । ब्रह्म बिना दूजौ नहीं मानौ ।[२]

योग-साधना

ज्ञान का व्यावहारिक रूप साधना में दिखाई पड़ता है। योग साधना के अन्तर्गत शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की साधनाओं का उपदेश दिया गया है। उद्धव गोपियों को योग मार्ग का अनुसरण करने के लिए कहते हैं -

करि समाधि अंतर गति ध्यावहु, यह उनको उपदेश ।
वै अविगत अविनासी पूरन, सब घट रहे समाइ ।।
तत्व ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, वेद पुराननि गाइ ।
सगुन रूप तजि निरगुन ध्यावहु, इक चित इक मन लाइ ।।
वह उपाइ करि बिरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ ।।[३]

सूर के उद्धव ने यौगिक क्रियाओं के विस्तृत वर्णन द्वारा गोपियों को साधना मार्ग अपनाने के लिए कहा है -

आसन बैसन ध्यान धारना, मन आरोहन कीजै ।
षटदल अठ द्वादस दस निरमल, अपजा जाप जपाली ।
त्रिकुटी संगम ब्रह्म द्वार भिदि, मौं मिलि हैं बनमाली ।।[४]

१- सूरसागर पद ४२२४
२- वही, पद ४७१२
३- वही, पद ४१२०
४- वही, पद ४४८४

सूर की गोपियों का भक्तिभावपूर्ण प्रत्युत्तर :

गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रेम में निमग्न हैं। उद्धव की ज्ञानचर्चा के विरोध में उन्होंने बहुत कुछ कहा है। वे ज्ञानयोग की कठिनाइयों के वर्णन द्वारा उसे दुर्गम और दुस्साध्य बताती हैं। उनका श्रीकृष्ण के प्रति अविचल भक्तिभाव है। वे कहती हैं :-

"हम अलि गोकुल नाथ अराध्यौ।"[१]

प्रेमभक्ति में जो सुख आनन्द तथा सरसता है वह योग साधना में नहीं। अहर्निश श्रीकृष्ण के ध्यान में रत गोपियों को उद्धव का ज्ञानोपदेश व्यथित कर देता है। उनके नयनों में अपने प्रियतम का रम्य रूप छाया हुआ है। उनका विश्वास है कि निर्गुण कृष्ण ने भक्तों के लिए सगुण रूप धारण किया है -

"सूर नंद-सुत दयाल, लीला वपु धारी।
निरगुन तैं सगुन भए, संतन हितकारी।।"[२]

सूर की गोपियाँ पुष्टिमार्गीय भक्त हैं जिन्होंने सगुण स्वरूप कृष्ण को ही सर्व भाव से भजा है। उन्हें नवधा भक्ति ही प्रिय है -

"जोगी होइ सो जोग बखानै। नवधा भक्ति दास रति मानै।
भजनानंद हमैं अलि प्यारौ। ब्रह्मानंद सुख कौन विचारौ।।"[३]

नंददास के उद्धव की ज्ञानमार्गी विचारधारा :

नन्ददास ने अपने भंवरगीत में दार्शनिक तर्क पद्धति का आधार ग्रहण किया है। उद्धव ब्रह्म के स्वरूप को निरूपित करते हुए कहते हैं कि ब्रह्म निर्गुण और ज्ञानगम्य है -

वे तुम तैं नहिं दूर ग्यान की आखिन देखौ।
अखिल विश्व भर पूरि, ब्रह्म सब रूप विसेखौ।
लोह, दारु, पाषान में, जल थल मांहि अकास।
सचर अचर बरतत सबै, जोति ब्रह्म परकास।।[४]

१- बृ०४९९६ सूरसागर, पद ४११८
२- वही, पद,४५३५
३- वही, पद,४७१२
४- नन्ददासकृत -भंवरगीत, ७

तुम जिन्हें कृष्ण कहती हो, वे तत्वत: परब्रह्म हैं। समस्त ब्रह्मांड और जगत की उत्पत्ति उनसे ही हुई है। वे लीला के हेतु सगुण अवतार धारण करते हैं। अत: हे गोपियो तुम निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए योगमार्ग का अनुसरण करो -

"जाहि कहौ तुम कान्ह ताहि कोउ पिता न माता।
अखिल षंड ब्रह्मांड विस्व उनही तैं जाता।।
लीला गुन अवतार कै धरि आए तन स्याम।
जोग जुगति ही पाइये पारब्रह्म परधाम।।"[१]

उद्धव के ज्ञानोपदेश द्वारा कवि ने निर्गुण ब्रह्म, ज्ञान, कर्म मोक्ष आदि की विस्तृत विवेचना की है।

नंददास की गोपियाँ द्वारा ब्रह्म सगुण का मण्डन :

नन्ददास की गोपियाँ प्रेम-भक्ति में तल्लीन, मुक्ति को तुच्छ समझने वाली और श्रीकृष्ण के सगुण रूप के प्रति अनन्य भाव लिए हुए हैं। वे उद्धव द्वारा प्रतिपादित निर्गुण ब्रह्म का खण्डन करते हुए कहती हैं - कि यदि उनका मुख नहीं है तो माखन किस ने खाया ? यदि उनके पैर नहीं थे तो गायों के साथ बन-बन कौन भटकता था ? कृष्ण ने अपने नेत्रों में अंजन लगाया और गोवर्धन पर्वत को अपने हाथों से उठाया था। हे उद्धव, नन्द यशोदा-सुवन कुंवर कृष्ण ब्रजनाथ ही हमारे स्वामी हैं :-

जो मुख नाहिं हुतौ, कहौ किन माखन खायौ ?
पायन बिन गोसंग, कहो को बन बन धायौ ?
आंखिन मैं अंजन दियौ, गोवर्धन दियौ हाथ।
नन्द जसोदा पूत ह्वै कुवर कान्ह ब्रजनाथ।।"[२]

सगुण ब्रह्म प्रत्यक्ष सूर्य के समान है। उसे छोड़ निर्गुण ब्रह्म को खोजना सूर्य को छोड़ धूम को पकड़ने के समान है। भगवान श्रीकृष्ण में हमें हथेली पर रखे हुए आंवले

१- नन्ददास कृत - भंवरगीत : ११

२- वही, ,, १०

की तरह ब्रह्म के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं -

नास्तिक हैं जो लोग कहा जानैं निज रूपै ।।
ग्रस्ट भांन जो कांडि गहैं परछांही धूपै ।।
हमरे बिन यह रूप ही और न कछू सुहाय ।
ज्यौं करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिषाय ।।"[१]

नन्ददास की गोपियां दर्शन के जटिल सिद्धान्तों को समझनेवाली पूर्ण पंडिता हैं। उद्धव के तर्कों को उखाड़ फेंकने के लिए वे प्रेम, भक्ति और सगुणोपासना का पक्ष लेती हैं। उनके भाव एवं विचारपूर्ण तर्कों के सामने उद्धव का ज्ञानदर्प समाप्त हो जाता है। उद्धव पर गोपियों की विजय निर्गुण पर सगुण की, ज्ञान पर भक्ति की और योग पर प्रेम की विजय है। पुष्टिमार्ग में तन्मयतापूर्ण प्रेमासक्ति को भागवद-भक्ति का आदर्श माना गया है जिसके दर्शन हमें गोपियों के व्यवहार में होते हैं। नंददास के भंवरगीत के अंत में कृष्ण और गोपियों की अद्वैतता में शुद्धाद्वैत दर्शन का प्रमाण है। नंददास जी का भंवरगीत केवल सगुण भक्ति-काव्य ही नहीं, दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादक पुष्टिमार्गीय ग्रन्थ भी है।[२]

हिन्दी के परवर्ती भ्रमरगीत काव्य में ज्ञान और भक्ति का यह विवाद एवं एक या दूसरे रूप में मिलता है। हिन्दी भ्रमरगीत काव्य की परंपरा के अध्याय में हमने विभिन्न कवियों का परिचय देते हुए ज्ञान और भक्ति के विवाद पर भी यथास्थान प्रकाश डाला है। अत: विषय विस्तार के भय से पिष्टपेषण करना नहीं चाहते। अब यहां गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में प्राप्त भक्ति, ज्ञान अर्थात् दार्शनिकता पर विचार करेंगे।

गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में ज्ञान और भक्ति के बीच विवाद उपस्थित कर

१- नन्ददास कृत : भंवरगीत-२८

२- भंवरगीत विमर्श : डा० भगवानदास तिवारी पृष्ठ १४१
प्रथम संस्करण -१९७२
प्रकाशक : स्मृति प्रकाशन, ६१ महाजनी टोला, इलाहाबाद।

भक्ति की महिमा का गान मुख्य प्रयोजन रहा है। अधिकांश भ्रमरगीताओं में उद्धव को ज्ञानमार्गी के रूप में लिया गया है जो कि गोपियों को निर्गुण का उपदेश देते हैं। ज्ञानी उद्धव गोपियों की अप्रतिम प्रेम-लक्षणा भक्ति से मुग्ध होकर या परास्त होकर अन्तिम में भक्ति की महिमा का गान करते और कभी कभी उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए बताये गये हैं। अधिकांश भ्रमरगीतों में सामान्यतया श्रीकृष्ण का संदेश पहुंचाने के लिए आये हुए उद्धव के मुख में नंद, यशोदा और गोपियों को आश्वासन देने हेतु ईश्वर की सर्वव्यापकता और हृदय में उनके निवास की ज्ञानवार्ता निराकार का उपदेश दिया गया है। उसके प्रत्युत्तर में नंद, यशोदा और गोपियों ने प्रेम-भक्ति के पक्ष में अपने अनुभवों का वर्णन किया है और कम-कभी सशक्त तर्कों द्वारा भक्ति का समर्थन और ज्ञान का विरोध किया है। इस प्रकार गुजराती भ्रमरगीत काव्य परंपरा में ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दोनों के सिद्धान्तों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चर्चा मिलती है जो बहुधा उपमा और रूपक जैसे अलंकारों से युक्त होने के कारण कलात्मक रूप धारण किये हुए हैं। प्रत्येक कवि ने ज्ञान और भक्ति के खण्डन-मण्डन में एक या दूसरी पद्धति का प्रयोग किया है, फिर भी अधिकांश में साम्य मिलता है जिसके कारण पिष्ट - पेषण और तज्जनित नीरसता के दर्शन होते हैं।

कवि चतुर्भुज के उद्धव को गोपियों का भक्तिभाव देखकर आश्चर्य का अनुभव होता है। उनकी विरह व्यथा को दूर करने के उद्देश्य से वे ज्ञान-गोष्ठी का प्रारंभ करते हैं -

"वेद पुराण जोउ रे कथ्थी, कृष्ण बिना रज मात्र नथ्थी।"[१]

परन्तु गोपियों को इस प्रकार की ज्ञान-भरी बातों में कैसे रस हो सकता है? वे तो मात्र इतना ही जानती हैं -

"जाणिई हरि-गलि लागी रहीई"[२]

ज्ञान गोपियों की समझ में नहीं आता।

केशव के 'गोपी संदेश' के उद्धव खाना-पीना जिन्हें अच्छा नहीं लगता ऐसी

१- भ्रमरगीता : चतुर्भुज कंडिका : ७५

२- वही, ,, :७७

विरह विदग्धा गोपियों को समझाते हुए कहते हैं :-

"मनमांहे माधव देखो रे,
ए व्यापक अल्पगम लेखो रे"[1]

परन्तु गोपियाँ क्रोधित होकर और लज्जा छोड़कर उद्धव से साफ साफ सुना देती हैं कि योग अपने पास रखिए और हमें श्रीकृष्ण दीजिए :-

"एणे वचने वनिता कोपी रे,
कहे कामिनी लज्जा लोपी रे ;
एह जोग जुगत सहु राखो रे,
अम्ने आंहां अच्युत राखो रे ।"[2]

गोपियाँ तो श्रीकृष्ण को प्रत्यक्षरूप में प्राप्त करने के लिए पागल हैं । यही कारण है कि ऊध्वा के प्रति वे बार-बार रोष व्यक्त करती हैं ।

कवि

कवि ब्रेहेदेव ने चतुर्भुज और केशव की तुलना में ज्ञान और भक्ति के संघर्ष को चित्ररूप में उपस्थित किया है । इस कवि की गोपियों में उद्धव की ज्ञानभरी बातों को सुनने का धैर्य देखकर आश्चर्य होता है । कवि ने ईश्वर की सर्वव्यापकता और हृदय कमल में ही उनके निवास की बात का वर्णन विशद रूप से किया है । उद्धव गोपियों को मोह का त्याग करने के लिए समझाते हैं :-

"अंतर्यामी ते अलगुं नथी ;
रुदि -कमलमां ते छि कमलापति"[3]

ब्रेहेदेव की कवित्व शक्ति का यहां परिचय मिलता है । एक के पश्चात् एक वह समर्थ दृष्टांत उपस्थित करता है और गोपियों को ज्ञानभरी बातों में आपादचूड निमग्न कर देता है -

---

१- गोपी सन्देश : केशवराम

२- वही, : केशवराम कंडिका ३४

३- भ्रमरगीता : ब्रेहेदेव कडवुं (पद) १६

"घट-घट मांहि रह्यु व्यापी,
एक पूरण आतमा ।
दर्पण नुं शुं काज ?
मिहिरी, पेख कंकण हाथमां ।"[१]

कृष्ण । कृष्ण। रटते हुए एक दिन स्वयं कृष्ण बन जाने की बात उद्धव जी कहते हैं । वे ज्ञान की बातें प्रेमपूर्वक कहते हैं । क्षण भर के लिए गोपियाँ उनकी तर्क अर्थ पद्धति के प्रभाव से अपना शोक भूल जाती हों ऐसा लगता है । उद्धव का कहना है कि सुख दु:ख का कारण तो मन है । श्रीकृष्ण तो एकमेव-अद्वितीयम् हैं । उन्होंने ~~अकेले~~ मात्र लीला के लिए यह शरीर धारण किया है -

"लीला तनु-ग्रही व्रज वसयु,
तेहनुं कारण कुणि न कलाइ ।"[२]

ईश्वर की सर्व व्यापकता का वर्णन इतनी सूक्ष्मता के साथ एक मात्र ब्रह्मदेव ही कर सका है । आत्मा और परमात्मा का भेद उसने कनक और कुंडल के माध्यम से समझाया है -

"कनक नि कुंडल वाई । ये अंतुर,
जीव नि ईश्वर एह परंतु ।"[३]

ज्ञान के विशद वर्णन के कारण शुष्कता को लेकर रस-क्षति का भय उपस्थित होता है । प्रारंभ में ज्ञान की बातें जितनी प्रभावोत्पादक हैं, उतनी बाद में नहीं । इसका एक मात्र कारण व्यर्थ का विस्तार ही है । श्रीकृष्ण के अनन्त रूप को बार-बार सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है । उद्धव के अभिप्राय में अक्षर, परब्रह्म परमात्मा के साक्षात्कार के लिए मोह और विषय का त्याग अत्यंत आवश्यक है । उद्धव की इन

१- भ्रमरगीता : ब्रह्मदेव कडवुं पद-१६
२- वही : ,, पद १६
३- वही : कडवुं पद-१७

सभी बातों को स्वीकार करते हुए भी गोपियों ने अपना प्रत्युत्तर प्रभावोत्पादक ढंग से दिया है। वे कहती हैं कि परमात्मा के अव्यक्त रूप के साथ रास कैसे खेला जा सकता है -

"अविगत साथे उद्धव जी,
समो केहि पेरे रास रमीशे ?"[1]

गोपियाँ ज्ञान की बातें समझने पर भी मुग्धता का त्याग नहीं कर सकतीं। वे गोपाल कृष्ण के साथ प्रेम से बंध चुकी हैं। प्रेम के बंधन का त्याग संभव नहीं है -

"ग्रहू मन ये गांठ्य बांधी,
आज कहु क्यम छोडीइ ?
जे नेह-सकल सबल छि ते,
अबल कहु ; स्यम पोडीई ।।"[2]

व्रजनारियों के एक एक से बढ़कर तर्क अत्यंत आस्वाद्य हैं। नियति ने ही उनके मन को श्रीकृष्ण के साथ बांध दिया है। भक्ति का रंग स्वाभाविक ही उनके साथ लगा हुआ है। उनकी प्रीति तो जन्म-जन्मांतर की है -

"छे प्रीत्य पिछिला भव-तणी,
ते आज क्यम पाछी अशि ?
जे रंग चिठा चोलना,
ते देहि साथ थी जशि ।"[3]

श्रीकृष्ण के प्रति प्रबल अनुराग गोपियों को ज्ञान की ओर आकृष्ट नहीं होने देता। ज्ञान की बातें सुनकर उनके हृदय की व्यथा आंसुओं के माध्यम से व्यक्त होने लगती है -

---

१- भ्रमरगीता : ब्रेहेदेव पद ६
२- वही, ,, कडवुं २१।३
३- वही, ,, ,, २१

"उझ दुखीनि उद्धव । इम घटि,
प्रेमि जाणी वांणीनि पलंवटि ।
आंपू असमधां नयणे उलटि ;
मन्मथ पीडि देहडी आवरि ।।"[१]

इन शब्दों मे गोपी हृदय की करुणा साकार हो उठी है । गोपियों की असहाय स्थिति का कवि ने हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है । ज्ञान के उपकरणों का क्या ? वे योग की साधना के लिए कहां जांय ? उनका मार्गदर्शन कौन करेगा ? उनका अनन्य विश्वास है कि उनकी किस्मत में ही प्रेम-भक्ति लिखी गई है । भाग्य में लिखे विधान को कौन मिटा सकता है ? प्रणयानुरक्ता गोपियां ऐसा सोचते सोचते - किंकर्तव्यविमूढ़ बन जाती हैं ।। वे बार बार ज्ञानी उद्धव से पूछती हैं कि अब उन्हें क्या करना चाहिए ? गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ अपने गठ बंधन की बात कहती हैं । देह - त्याग द्वारा ही प्रेम का यह बन्धन छूट सकता है :-

"अब निज गांठ बनी माधोपु,
ते तूटे तन छूटे -प्रीति ।।"[२]

गोपियाँ उद्धव जी से कहती हैं कि आपके द्वारा कही गई बातें उत्तम होने पर भी हम अपनी विवशता के कारण अनुसरण नहीं कर सकतीं । वे विरह वेदना के कारण अत्यंत विकल हैं । कवि ब्रेहेदेव ने ज्ञान और भक्ति को समान महत्व देने का प्रयत्न किया है । फिर भी ऐसा लगता है कि ज्ञान के पक्ष में आवश्यकता से अधिक कहकर संभवत: अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान को ऊंचा स्थान देने का प्रयत्न किया है ।

'रसिकगीता' के रचयिता भीम ने ज्ञान और भक्ति का विवाद रसिक रूप में उपस्थित किया है । उद्धव अपनी ज्ञान चर्चा के आरंभ में ही गोपियों को अज्ञानी कहते हैं :-

---

१- भ्रमरगीता : ब्रेहेदेव कडवुं २२
२- वही, ,, ,, २८ पद ७।२

"अति अज्ञान जाणुं रे, तेणे तमो बल वलो ।"[३]

उद्धव जी उन्हें योग मार्ग का अनुसरण करने के लिए बार बार समझाते हैं :-

"तमो सर्वनार सेवो रे ;
योग त्यान धरी ;
तमने सही मलशे रे,
केवल नरहरि ।।"[२]

प्रेम दीवानी गोपियों के लिए योगमार्ग कोरा उपदेश ही है । विरह व्यथित ब्रजवनिताएं ऐसी ज्ञान की बातें अधिक समय तक सुनने के लिए तैयार नहीं हैं ।

भीम उद्धव की ज्ञानचर्चा का संक्षेप में वर्णन करने के पश्चात् भक्तिभावपूर्ण श्रद्धा भरे स्वर में गोपियों के तर्कों को प्रस्तुत करता है । विभिन्न दृष्टांतों द्वारा कवि ने योग और जोग की जो तुलना की है वह अत्यंत आस्वाद्य है । गोपियों के अभिप्राय में योग का कोई मूल्य नहीं है । उन्हें योग की बातें विष के समान लगती हैं । वे ज्ञानी उद्धव को योग की शुष्क बातें न कहकर व रसपूर्ण बातें करने के लिए कहती हैं :-

"ओधवजी ! विष कथा रे,
कोने जड जोगनी ।
ब्रजमां वात कीजे रे,
भला रस जोगनी ।।"[३]

गोपियों के अभिप्राय में ज्ञान का मार्ग उधार का मार्ग है । भक्तिमार्ग गज सवारी के समान है जबकि ज्ञानमार्ग गर्दभ सवारी के समान है । श्रीकृष्ण के प्रति उन्हें अनन्य श्रद्धा है । इसीलिए वे संपूर्ण आत्मविश्वास के साथ कहती हैं कि हमारे लिए

१- रसिक गीता : भीम कंडिका ३३
२- वही, ,, ३७
३- वही, ,, ३६

तो श्रीकृष्ण जन्म जन्मांतर के ठेठ साथी हैं -

"अमारो कृष्ण वर रे,
भवोभव खांत रे ।"[१]

ज्ञान के उपदेशक उद्धव जी को गोपियों ने प्रत्युत्तर में भक्ति के उपदेशक के समान ही उपदेश दिया है । उद्धव द्वारा भक्ति की उपेक्षा उनके लिए असह्य हो उठी है और उनका प्रकोप विभिन्न तर्कों के माध्यम से प्रस्फुटित हुआ है । वे उन्हें ज्ञानमार्ग की साधना काशी जाकर करने के लिए कहती हैं :-

"उद्धव जी ! जाओ काशी रे ;
साधो संन्यास नी ।।"[२]

जिस प्रकार सागर में सरिताएं मिल जाती हैं उसी प्रकार गोपियों का मन श्रीकृष्ण के साथ साकार हो उठा है -

"जेम सागर मांहे रे,
नदीनां नीर मल्यां ।
छ ते केम टाळमां टळे रे,
जेह सुं मन मल्यां ।।"[३]

वेदों में वर्णित ईश्वर के प्रति उन्हें विश्वास नहीं है । वेद तो ईश्वर को दूर बताते हैं जबकि वह (श्रीकृष्ण) तो हमारे हाथों में है -

"वेद तो दूर देखाडे रे,
हरि सम हाथमां ।"[४]

गोपियां जानती हैं कि ज्ञानी प्रेमभक्ति की रीति को नहीं समझ सकता । परन्तु स्वयं हरि ने ज्ञानयोग का संदेश भेजते समय यह तू क्यों न सोचा जानकर उन्हें

१- रसिकगीता : मीम कंडिका ४६
२- वही, ,, ४८
३- वही, ,, ५१
४- वही, ,, ५२

आश्चर्य होता है -

"उद्धव जी ! हरिए न जाण्युं रे,

एने किम अनुसरुं ?

एवा अविचारनी आते रे,

अमो राजी मरुं ।"[१]

ज्ञान और भक्ति का यह विवाद क्रमश: चरमसीमा पर पहुंचता है । कवि ने गोपियों के तर्कों द्वारा प्रेम-लक्षणा भक्ति का सफल समर्थन किया है । भक्तिभावपूर्ण, प्रेम दीवानी, वाक्पटु गोपियां जब तर्क पर उतर जाती हैं तो उद्धव को बोलने तक का अवसर नहीं देतीं । उद्धव के ज्ञानगर्व को दूर करने के लिए वे कहती हैं कि हमारे प्रियतम मथुरा नहीं गये हैं वे तो हमारी आंखों में छुपे हुए हैं :-

"अमारो नाथ उद्धव रे !

मथुरा नथी गया ;

तने दृष्ट न आगे रे,

नयणां मां छीपी रह्या ।।"[२]

इस प्रकार के तर्क औचित्यपूर्ण प्रतीत नहीं होते । शायद विषय विस्तार के मोह में कवि ने ऐसे तर्क प्रस्तुत किये हों ! ऐसे तर्क ज्ञान और भक्ति के बीच की रेखा का अतिक्रमण करते हों ऐसा प्रतीत होता है । प्रीति का महत्व गोपियों के मन में सर्वाधिक है । प्रेम की तलवार कमर में बांधकर अब वे पीछे हटना नहीं चाहतीं -

"प्रीत तरवार बांधी रे,

पग रे नाश करे ।

तें-नें मरण मरुं रे,

जीवी ने शुं करे ?"[३]

'प्रेम-पचीसी' में विश्वनाथ ने ज्ञान भक्ति का विवाद मौलिक रूप से उपस्थित

१- रसिकगीता : भीम कंडिका ६०

२- वही, ,, ७५

३- वही, ,, ६७

किया है। जानी उद्धव ने विभिन्न दृष्टांतों द्वारा जीवात्मा और परमात्मा की एकता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है -

"ज्यऊं अक्षर में नाम,
नाम में अक्षर आवे ;
ज्यऊं कंकण में हेम,
हेम कंकण में कहाव ।
दीपक में पावक बसे,
पावक दीपक एक ।
ते ते तुम में हरि बसे,
समझो करी बिबेक ।।[१]

अधिकांश उदाहरण परंपरानुगत हैं। मात्र अभिव्यक्ति में मौलिकता के दर्शन होते हैं। ईश्वर की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन सहज, सुबोध और सरल है। कवि ने ज्ञानवाणी को ब्रजभाषा का स्पर्श देकर भाषा में सजीवता भरने का प्रयत्न किया है -

"एक चन्द्र अंतर बसे,
प्रतिबिंब को नहीं पार ।
स्थावर -जंगम में जदुपति,
एक ही एक आधार ।।"[२]

गोपियों के हृदय और मस्तिष्क पर इस निर्गुण के उपदेश का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। निर्गुण ब्रह्म की उपासना उनके लिए अनुकूल नहीं है। वे तो मूर्त, सगुण, साकार, प्रत्यक्ष रूप में श्रीकृष्ण के दर्शन करना चाहती हैं। उद्धव के ज्ञानपूर्ण प्रबल तर्क प्रभावहीन सिद्ध होते हैं। गोपियों की तो सगुण भक्ति में असीम श्रद्धा है। अपने प्रियतम के अभाव में वे असह्य विरह व्यथा का अनुभव करती हैं और अत्यंत विनम्र होकर उद्धव जी से कहती हैं कि दीपक को तितलियों की व्यथा का ज्ञान नहीं होता :-

---

१- प्रेम-पचीसी : विश्वनाथ जानी पद १८
२- वही, ,, पद १८

"दीप न जाणे पतंग तणी व्यथा ।"[१]

श्रीकृष्ण ने उद्धव जी के साथ जो ज्ञान-संदेश भेजा है, उसको लेकर गोपियाँ रोष का अनुभव करती हैं और उन्हें कपटी कहती हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि उन्हें ज्ञान, योग और अमूर्त की बातें पसंद नहीं हैं -

"उद्धव आगल्य ज्ञान केहेतां,
कपटी कां लाव्यो नहीं ?
एक वार आवे आंख आगल,
जोऊं जो सके कही ।"[२]

उन्हें विश्वास है कि श्रीकृष्ण स्वयं आकर उनके सामने ज्ञान की बातें नहीं सुना सकते । वे श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का स्मरण करती हुई उद्धव के निर्गुण मार्ग का खण्डन अत्यंत स्वाभाविकता के साथ करती हैं । उनके अनन्य प्रेम और अविचल विश्वास का अत्यंत स्वाभाविकता के साथ चित्रण हुआ है ।

कवि प्रेमानंद की 'भ्रमरगीता' के उद्धव ज्ञानमार्ग के उपदेश द्वारा प्रथम नंद-यशोदा को आश्वासन देने का प्रयत्न करते हैं । नियति के उल्लेख द्वारा वे कहते हैं कि भाग्य के विधान को टालना मुश्किल है, अत: विलाप करना व्यर्थ है । स्नेही जब तक कृपानुबंध होता है तब तक ही साथ देता है :-

"गोल कसल ने पुल मिती ;
भ्रात भगिनी सेवक पशु ;
ए गत जन्म ने कृष्ण -सम्बन्धे ,
उद्धव धरमां थई वस्युं ।।"[३]

ज्ञान की शुष्क बातों को सीधे ही व्यक्त न करते हुए कवि ने व्यावहारिक ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है । ज्ञानी उद्धव ने श्रीकृष्ण के ब्रह्मस्वरूप का परिचय देते हुए क्रमश: अपने तर्कों का विस्तार किया है । यशोदा को ईश्वर के सर्वव्यापी रूप

१- प्रेमपचीसी : विश्वनाथ जानी, पद १६
२- वही, ,, पद १६
३- भ्रमरगीता : प्रेमानंद पद १२७

की ओर ध्यान देकर पुत्र-भाव छोड़ने के लिए समझाया गया है। मानव तो निमित्त मात्र है और जगत के सम्बन्ध भी निमित्त स्वरूप है :-

"देवकी ए नथी प्रसव कीधो,
तमे उछेर्यां नथी ;
एहवुं जाणी ब्रज भावे जुओ,
पुत्रभाव मूकी सर्वेथी ।"[१]

श्रीकृष्ण तो अनादि और अनंत हैं, मायातीत और गुणातीत हैं। उनके प्रति पुत्र-भाव कैसे रखा जा सकता है ? उनके साथ रक्त सम्बंध कैसा ? किन्तु यशोदा को यह व्यर्थ का वाद विवाद पसंद नहीं। उनके प्रेमांध वात्सल्यपूर्ण हृदय पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनका प्रेम अभिन्न है। माता यशोदा के तर्कों में कवि के चातुर्य और प्रतिभा दोनों का सुभग समन्वय हुआ है। यशोदा ने उद्धव के ज्ञानोपदेश का प्रत्युत्तर देते हुए कहा है कि हम अज्ञानियों का मन तो काले कम्बल के समान होता है, जिस पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता :-

"अमो अज्ञानीनुं मन,
काळो कामळो रे ।
तेने न चढ़े दूजो रंग,
मेहेली श्यामता रे ।।"[२]

श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं के सहज वर्णन द्वारा यशोदा उनके ब्रह्मरूप की कल्पना व्यर्थ सिद्ध करना चाहती हैं। बालकृष्ण को ऊखल से बांधना, उनका मिट्टी खाना आदि प्रसंगों के उल्लेख द्वारा यशोदा के भक्ति-भाव का समर्थन किया गया है। ज्ञान बनाम भक्ति का उद्धव-यशोदा के बीच अच्छा संघर्ष बताया गया है। कवि ने ज्ञान और भक्ति के बीच किसी एक की श्रेष्ठता के प्रतिपादन का प्रयत्न नहीं किया है।

"भ्रमर पचीसी" में उद्धव की आत्मज्ञान भरी बातों की सही-सही अभिव्यक्ति मिलती है। यशोदा को समझाने का उनका तरीका निश्चय ही उत्तम है। प्रेमानन्द की

१- भ्रमरगीता : प्रेमानन्द कडवुं १२७

२- वही, ,, ,, १२७

विश्लेषण शक्ति का यहां अच्छा परिचय मिलता है। उद्धव जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण को न तो देवकी ने जन्म दिया है और न ही यशोदा ने उनका पालन-पोषण किया है। वे तो समस्त सृष्टि के पिता हैं। उनका रूप जगत के अणु-अणु में व्याप्त है। ऐसे श्रीकृष्ण के वियोग में रोना व्यर्थ है -

"देवकी ए नथी प्रसव कीधो,
तमो उरेयाँ नथी,
कुल भाव ने परहरो ;
उपदेश मानो सखी ;
अणुमात्र थी अलगो नथी,
सर्व रूप अंतर मां जुओ ;
जगत -पिता काई। पुत्र शानो ?
वृथा वियोगे शुं रुओ ?"[१]

पुत्रभाव का परित्याग कर श्रीकृष्ण के अनादिमध्यांत स्वरूप को समझाने का उद्धव ने संक्षेप में सुन्दर प्रयास किया है। उनके इस ज्ञानोपदेश का प्रत्युत्तर यशोदा ने प्रभावोत्पादक ढंग से दिया है। उसे अपने मातृत्व का गौरव है। जिसको उसने ऊखल से बांधा था उसे वह ब्रह्म मानने के लिए किसी भी मूल्य पर तैयार नहीं होती। उसका मन काले कम्बल के समान है जिस पर दूजा रंग नहीं चढ़ सकता।

ज्ञानी उद्धव ने गोपियों को योग साधना के का जो उपदेश दिया है वह अत्यंत रोचक है। विभिन्न दृष्टांतों द्वारा संक्षेप में ज्ञान-योग साधना की बातें प्रस्तुत की गई हैं। श्रीकृष्ण के चराचर में व्याप्त होने का वर्णन द्रष्टव्य है -

"जेम इंदुना प्रतिबिंब ते,
पृथक् पात्रे थाय।
जल तरंग ने कनक-कुंडल,
जगत मां जदुराय।"[२]

१- भ्रमर पचीसी : प्रेमानन्द पद ६

२- प्रेम पचीसी : प्रेमानन्द पद २२

गोपियों को ज्ञानभरी बातें अच्छी नहीं लगतीं । उनके लिए यह जले पर नमक छिड़कने के समान है । यह ज्ञानचर्चा उनके लिए आघातजनक सिद्ध होती है । उन्हें अपना प्रियतम निष्ठुर प्रतीत होता है जो उनके [illegible] प्रति दया नहीं दिखलाता :-

"बींही तो वेदनाए बलग्यो ;
दया कशी नव आणे रे ।"[१]

उनके शरीर का कोई अंग कृष्ण रहित नहीं है । फिर वे योग की साधना कैसे कर सकती हैं :-

"काना लगी कुंभ भर्यो,
नथी नीर मातुं रे ;
नख-शिख नंदलाल भर्यो,
कहां जोग साधुं रे ?"[२]

कवि पुरुषोत्तम ने अपने भ्रमरगीत में उद्धव या सगुण ज्ञानचर्चा का उल्लेख नहीं किया । किन्तु कवि सुन्दर ने अपने भ्रमरगीत में नंद-यशोदा और गोपियों के साथ उद्धव की ज्ञानचर्चा का उल्लेख किया है । श्रीकृष्ण की सर्व व्यापकता और देवत्व पर प्रकाश डालते हुए उद्धव जी कहते हैं कि उनके कोई माता-पिता नहीं है । जिस प्रकार जल में चंद्रमा का प्रतिबिंब पड़ता है किन्तु वह जल का स्पर्श नहीं करता, उसी प्रकार श्रीकृष्ण अविनाशी और सर्व व्यापक हैं :-

"जल चंद्र जोये देखीए ;
जेन सोम- बिंब -प्रकाश ;
इंदु ने नहीं अंबु भेदे,
व्यापक तेम अविनाश ।।"[३]

श्रीकृष्ण और गोपियों के अद्वैत भाव को विभिन्न उदाहरणों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है । उद्धव जी सहृदय होकर मानो श्रीकृष्ण के वचनों का ही उच्चारण

१- प्रेम-पच्चीसी : प्रेमानन्द पद २३

२- वही, ,, पद २३

३- भ्रमरगीता : सुन्दर सुत कडवुं १०

करते हैं इस प्रकार गोपियों को संबोधित करते हैं :-

"तम थकी नथी हुं वेगळो,
वाण एक ते निरधार"[१]

उद्धव के ज्ञानोपदेश को गोपियाँ अपने प्रबल तर्कों द्वारा प्रभावहीन बना देती हैं, वे कहती हैं कि हम प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण का त्याग कर मृगजल के पीछे दौड़ना नहीं चाहतीं :-

"प्रत्यक्ष पेखेली कृष्ण जी,
ने मृगजलनुं शुं काज ?"[२]

ज्ञानचर्चा का विशेष विस्तार नहीं किया गया। गोपियों के प्रीतिभाव और उनकी विरहावस्था का आलेखन ही कवि का प्रमुख उद्देश्य रहा हो ऐसा लगता है।

कवि कवठ रघुनाथ ने उद्धव की ज्ञानवाणी को अध्याहार रखा है और सीधे ही गोपियों के प्रत्युत्तर का निरूपण किया है। कृति का रूप प्रशंसनीय है। इस गायकता में प्रश्नोत्तर की नाट्यात्मकता का अभाव खटकता है। गोपियों के तर्कों में कवि की मौलिकता के दर्शन होते हैं। गोपियों की वाणी में उनकी विरह विराधना प्रतिबिंबित हुई है। उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति अपने अविचल और अनन्य प्रेम की चर्चा मार्मिकता के साथ की है। वे विनम्र भाव से कहती हैं कि हमारे लिए योग साधना करना असंभव है। हमारे हृदय में तो विरहाग्नि जल रही है। योग का संदेश हमारे लिए जले पर नमक छिड़कने के समान है -

"ओधव जी। अबला ते साधन शुं करे ?
जाठराग्नि विना तो ब्रह्मनी प्रगटी आग जो ;
संदेशो लाव्या ते मूंटा जोगनो,
नहीं खमातो राफ्या ऊपर डाग जो"[३]

अपनी असहायता का स्वीकार करते हुए गोपियाँ कहती हैं कि हम भोगी जनों के लिए काषायवस्त्री धारण करना कठिन है। योगी बनना हमारे लिए आज और

१- भ्रमरगीत : सुन्दर सुत कडवुं ३२
२- वही, ,, ३४
३- उद्धव संदेश, रघुनाथदास गरबी ५

शरम की बात है :-

"जोगीडां थइये तो जगमां ग्राजिये,

भोगीडां क्यम धरि भगवो भेष जो ?"[१]

गोपियों को ज्ञान का गूढार्थ अच्छा नहीं लगता । वे अपना सर्वस्व श्यामसुन्दर को सौंप चुकी हैं :-

"ज्ञान गूढारथ तो मनमां गमतुं नथी ;

सुंदरवर नें सोंप्या तन मन धन जो ।"[२]

इस प्रकार सर्वस्व का समर्पण करने के पश्चात् एवं शेष क्या बच सकता है ? योग की विशद चर्चा नहीं होने के कारण गुष्कता नहीं आ पाई है । गोपियां अत्यंत स्वाभाविकता से कहती हैं कि उनका मन मोहन के साथ बंधा हुआ है । अब उन्हें षड्दर्शन की इच्छा नहीं है ।

कल्याण कृत 'बोधक गीता' में भी उद्धव की ज्ञानवाणी का अभाव है । उद्धव के ज्ञानोपदेश के प्रत्युत्तर का ही कवि ने निरूपण किया है । गोपियों ने योग और ज्ञानमार्ग का विरोध करते हुए अनेक मार्मिक बातें कही हैं । उन्होंने ज्ञान की बातें प्रेमीजनों के आगे नहीं करने के लिए कहा है । ज्ञानी और प्रेमी के मार्ग भिन्न है यह कवि ने अत्यंत संक्षेप में कुशलतापूर्वक कहा है -

"तमारी करमी आगल जै कहेजो रे,

नव लहो प्रेमाणो परवेश ।"[३]

कवि गोविन्दराम ने भी ज्ञानचर्चा का उल्लेख न करते हुए यशोदा और गोपियों की आर्तवाणी द्वारा भक्ति की महिमा का गान किया है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी एवं गुजराती प्रमरगीत काव्य में उद्धव निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं और गोपियाँ सगुण ब्रह्म की उपासिका हैं । दोनों ने क्रमश: ज्ञान और भक्ति के सम्बन्ध में अपने अपने तर्क प्रस्तुत किए हैं । हिन्दी एवं गुजराती

१- उद्धव सन्देश : रघुनाथदास गरबी ५

२- वही, ,, ५

३- बोधकजीनी गरबी : कल्याण कृत : १३

भ्रमरगीत काव्य में न्यूनाधिक मात्रा में ज्ञान-भक्ति का यह विवाद समानरूप से मिलता है। ज्ञान और भक्ति के सम्बन्ध में हिन्दी एवं गुजराती के भ्रमरगीतकार कवियों ने जो भावात्मक एवं विचारात्मक तर्क प्रस्तुत किये हैं, इनमें भी अधिकांश साम्य मिलता है।